(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ

M.Sc., Ph.D.

वर्ष-22 जून-2012 अंक-6

राम रसाइन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीयण दुर्लभ है, मांगे सीस कलाल॥

राम का प्रेम अद्‌भुत रसायन है। यह रस पीने में बहुत अधिक मधुर होता है। किन्तु इसका पान बहुत दुर्लभ है। कलार (गुरु) जो इस रस का पिलाने वाला है। बदले में शीश मांगता है अर्थात् सारा अहंकार समर्पण करके ही यह रस पिया जा सकता है।

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346

(1936-2009)

चेतना का विकास

(Development in Consciousness)

✍ डॉ० शम्भू नाथ

जहां जीवन है: वहां दो जगत हैं।
अन्दर का जगत और बाहर का जगत।
दोनों जगतों की मूल बनावट एक जैसी ही होती है।

बाहर के जगत में एक पृथ्वी और एक आसमान है। सारे प्राणी पृथ्वी पर ही हैं। आसमान में एक बहुत बड़ा सूरज चमकता रहता है: जो हमेशा बादलों के पीछे ही रहता है। सूरज की रोशनी और गर्मी दोनों ही पृथ्वी तक हमेशा बादलों से छनकर ही आती हैं। जब बादल घने होते हैं: तब सूरज की रोशनी और गर्मी दोनों ही पृथ्वी पर कम आ पाती हैं। और जब बादलों का घनापन कम हो जाता है: तब पृथ्वी पर सूरज की रोशनी और गर्मी दोनों बढ़ जाती हैं।

इसी प्रकार से अन्दर के जगत में भी एक सूर्य चमकता रहता है: जिसे आत्मा कहते हैं। इस सूर्य की रोशनी या गर्मी ईश्वरीय शक्ति होती है।

आत्मा हमेशा संस्कारों के पीछे रहता है: जैसे सूरज बादलों के पीछे रहता है। और मन संस्कारों के पीछे दूसरी ओर रहता है जैसे पृथ्वी बादलों के दूसरी ओर! आत्मा की शक्ति संस्कारों से छनकर मन तक पहुंचती रहती है।

मन की तुलना पृथ्वी से की जा सकती है, आत्मा की सूरज से और संस्कारों की बादलों से।

पृथ्वी पर न मालूम कितने देश हैं: जो कि प्रदेशों, फिर शहरों और फिर गांवों में बंटे हुए हैं। बिल्कुल इसी प्रकार से हर मनुष्य का जीवन अनन्त पहलुओं में बंटा हुआ है। जैसे स्वास्थ्य, धन, मित्र, प्यार, क्रोध, लालच इत्यादि।

पृथ्वी के सभी शहरों में धूप या गर्मी एक जैसी नहीं रहती। बिल्कुल इसी प्रकार से जीवन के सारे पहलुओं में आत्मा की शक्तिः संस्कारों से छनकर एक जैसी नहीं पहुंचती।

सत्य तो यह है कि हर पहलू के संस्कारों की अवस्था ही अलग-अलग रहती है। आत्मा की शक्ति सुख की शक्ति है। इसलिए जिस पहलू में आत्मा की जितनी शक्ति पहुंच जाती है: मनुष्य उस पहलू का उतना ही सुख भोग लेता है। इस शक्ति की कमी का मूल कारण: जीवन के अलग-अलग पहलुओं में संस्कारों की अवस्था है।

साधारण मनुष्य को ब्रह्मतत्व का उपरोक्त ज्ञान नहीं है। इसलिए वह जीवन के सुख को संस्कार निष्कासन द्वारा प्राप्त करने की बजाय बुद्धि के आधीन क्रियाओं द्वारा प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। अर्थात् संस्कारों के घनेपन को कम करके जीवन के अलग-अलग पहलुओं में जीवन के सुख को बढ़ाने की कोशिश नहीं कर रहा है। मनुष्य बाहर की वस्तुओं में जीवन का सुख ढूंढ रहा है। इसीलिए उस के जीवन में दुःख बना ही रहता है।

प्रश्न यह उठता है कि एक साधारण मनुष्य को ब्रह्म के तत्व का उपरोक्त ज्ञान क्यों नहीं है?

मन के पास दो जगत हैं। मन इन दो जगतों में से किसी एक में हमेशा विचरण करता रहता है। समाज में मन का अलग-अलग क्षेत्रों में भागना: हमेशा ही अवगुण माना गया है।

लेकिन मन को यह अवगुण मिला कहां से ? मन को भागने का स्वभाव तो प्रकृति द्वारा मिला है। इसलिए यह गलत कैसे हो सकता है ?

मन का हर पल विचरण करने का स्वभाव: मन का सबसे बड़ा गुण है। यदि हम अपने जीवन का निरीक्षण करें तो हमें ज्ञान हो जाएगा: कि जीवन का समस्त ज्ञान प्राप्त करना ही; जीवन का एकमात्र लक्ष्य है।

ज्ञान में ही हर जगह से दुख को छीन लेने की शक्ति है।

हर मनुष्य के पास कोई न कोई ज्ञान है। किसी न किसी विषय का ज्ञान तो हर मनुष्य के पास होता ही है। जो बहुत पढ़ा-लिखा नहीं है: उसे भी कम से कम घरेलू या व्यक्तिगत आवश्यकता के अनेक विषयों का ज्ञान तो होता ही है।

हमें तो यह देखना है कि जो भी ज्ञान हमारे पास है: वह आया कैसे ?

ज्ञान का आधार: हमेशा ही मन का सम्बन्धित क्षेत्र में विचरण है। जिसका मन जिस क्षेत्र में विचरण करता है: उसे उस विषय का ज्ञान हो जाता है; या यह कह सकते हैं कि उस क्षेत्र में बुद्धि का विकास हो जाता है। अलग-अलग विषयों के ज्ञान का सम्बन्ध: उन क्षेत्रों में बुद्धि के विकास से होता है।

यहां तक कि यदि किसी को ब्रह्म तत्व का ज्ञान चाहिए: तो उसके मन को ब्रह्म के क्षेत्र में विचरण करना पड़ेगा।

इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि अलग-अलग पहलुओं में विचरण: मन का कितना बड़ा गुण है। मन के इस स्वभाव के बिना तो जीवन की भी सम्भावना नहीं है।

जब बच्चा पैदा होता है, उस समय वह आंख बन्द करके आनन्द में डूबा रहता है।

धीरे-धीरे हम झुन झुना बजा कर या तरह-तरह की आवाज करके उसके मन को बहिर्मुखी करने का प्रयास करते हैं। हमारी सारी क्रियाएं: जैसे उसके बदन की मालिश, या दिन भर उसे खिलाकर प्रसन्न रखने का प्रयास; उसके मन को केवल जीवन के विभिनन पहलुओं में विचरण करना ही सिखाता है। धीरे-धीरे मन के इस विचरण के आधार पर मन ज्ञानेन्द्रियों की मदद से बाहर के जगत के अलग-अलग पहलुओं की

अनुभूति करता है।

जिस क्षेत्र की अनुभूति हो जाती है: उसी क्षेत्र में विचरण के अभ्यास के आधार पर बुद्धि का विकास भी होने लगता है। अनुभूति की शक्ति बढ़ने को चेतना का विकास कहते हैं और विषयों का ज्ञान: बुद्धि के विकास के आधार पर बढ़ता है।

शुरू में बच्चे की चेतना का विकास गुब्बारा या छोटे-छोटे खिलौनों के क्षेत्र में होता है। फिर उसकी चेतना और बुद्धि का विकास जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में: जैसे नहाना धोना, खाना-पीना और खेलना इत्यादि के क्षेत्र में होता ही चला जाता है। बुद्धि और चेतना का विकास साथ-साथ ही होता है: और बड़ा होने पर वह अपनी शक्ति के आधार पर अलग-अलग क्षेत्रों; जैसे नौकरी, व्यापार, विद्यार्जन में अपनी बुद्धि और चेतना का विकास करता है। इस तरह से यह स्पष्ट है: कि केवल चेतना और बुद्धि का विकास ही जीवन है।

चेतना और बुद्धि के विकास की सम्भावना दो दिशाओं में है: 1. पहला बाह्य जगत् के विभिन्न पहलुओं के क्षेत्र में और 2. दूसरा आंतरिक जगत् के क्षेत्र में। आंतरिक जगत् के ज्ञान सम्बन्धित बुद्धि का समाज ने एक दूसरा नाम रख दिया: इसे विवेक कहते हैं।

जिस मनुष्य की चेतना का विकास केवल बाहर के जगत में होता है: उसका जीवन अधूरा है। तथा जिसकी आंतरिक चेतना के पूर्ण विकास के कारण बाहर का जगत छूट जाता है: वह संत महात्मा कहलाता है। और ज्यादातर ऐसे लोग गृहस्थ जीवन वालों में बहुत लोकप्रिय नहीं होते।

लेकिन जिन व्यक्तियों की चेतना का विकास; दोनों जगतों में हो जाता है: वे समाज के हर तरह के मनुष्यों के बीच सफलता प्राप्त करने लगते हैं।

सभी का मन सुख का भूखा है। मन असीम का अंश है: इसीलिए सीमित क्षेत्र के सुखों से उसे संतुष्टि नहीं मिलती। यहीं पर हम यह भी देख लें कि सुख क्या है?

सुख और दुःख मन और दूसरे सत्य के सम्पर्क की अनुभूति है। अन्दर के जगत् में केवल एक सत्य **ब्रह्म** है। लेकिन 84 लाख अर्थात् अनन्त जड़ों के माध्यम से प्रकट बाहर का जगत्: अनन्त सत्यों से भरा हुआ है। मनुष्य की मुस्कान या दुखी चेहरा, उसकी सुन्दरता या बदसूरती, स्वास्थ्य या स्वास्थ्य की कमी: ये सब बाहर के सत्यों के उदाहरण हैं। जब मन ज्ञानेन्द्रियों की मदद से इन सत्यों के सम्पर्क की अनुभूति करता है: तब उसे सुख या दु:ख कहते हैं।

जो सम्पर्क मन को अच्छा लगता है: उसे सुख कहते हैं। और जो मन को अच्छा नहीं लगता: उसे दु:ख कहते हैं। बाहर के समस्त पहलू सुख और दुख से भरे हैं। इसलिए विभिन्न पहलुओं के सुख के भोग की इच्छा तो मन में होती ही है। लेकिन बाहर के पहलुओं में एक भी ऐसा सुख नहीं है: जिसके भोग के पश्चात् मन पूर्ण सन्तुष्ट हो जाये।

जब मन का सम्पर्क अन्दर के तत्व से होता है, जिसे हम ब्रह्म कहते हैं: तो उसमें भी एक सुख है।

इस सम्पर्क का सुख इतना बड़ा सुख है: जितना बड़ा सुख बाहर के किसी पहलू में नहीं है। इसलिए ज्यों-ज्यों मन को ब्रह्म सुख की अनुभूति होता है: त्यों-त्यों जीवन में सन्तुष्टि पैदा होती है; और इस अनुभूति की कमी ही सारे असन्तोष का कारण है। जब तक आत्मा की शक्ति संस्कारों से छनकर मनको मिलती रहती है: तभी तक जीवन है, यानी तभी तक शरीर में रहकर मन के विचरण की सम्भावना है, चाहे यह विचरण बाहर के जगत् की ओर हो या अन्दर के जगत की ओर। बाहर

के जगत में मन का विचरण जब धीरे-धीरे बढ़ता है; और अन्दर के जगत में धीरे-धीरे कम होता जाता है: तब जीवन में बादल रूपी संस्कार बढ़ते हैं। और ज्यों-ज्यों ये संस्कार बढ़ते हैं: त्यों-त्यों मन को अन्दर की शक्ति का मिलना कम होता जाता है।

अन्दर की शक्ति के सम्पर्क की अनुभूति आनन्द और चित् होश के रूप में होती है। आनन्द (Bliss) ब्रह्म की शक्ति के सम्पर्क का सुख है या चित् इस सुख को अनुभव करने की शक्ति है और अनुभव की शक्ति ही चेतना है।

दूसरे शब्दों में जब आत्मा की शक्ति मन को कम मिलती है: तब मन के अन्दर की चेतना का पतन होने लगता है; और ज्यों-ज्यों आत्मा की शक्ति मन को अधिक मिलने लगती है: त्यों-त्यों मन के अन्दर की चेतना का पतन होने की बजाय उत्थान (विकास) होने लगता है। इस तरह यह समझना आसान है: कि अभ्यास द्वारा क्यों और कैसे अपनी आन्तरिक चेतना का विकास होता है? ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिल सकता जिसके अन्दर आन्तरिक चेतना तो पूरी हो: लेकिन बाह्य जगत की चेतना ही न हो। जीवन के लिए दोनों चेतनाओं का होना अनिवार्य है।

आन्तरिक चेतना की कमी में बुद्धि का विकास ही अहं है। मनुष्य की मांग केवल मन को सन्तुष्ट करने की है।

मन केवल अखण्ड (पूर्ण आनन्द) से ही सन्तुष्ट होगा।

जो केवल बाहर की चेतना के विकास में व्यस्त हो जाता है: उसके जीवन में तरह-तरह की असन्तुष्टियां बढ़ने लगती हैं।

यदि किसी की भूख 10 रोटी की है और उसे केवल दो रोटी मिलती हैं, तो बाकी 8 रोटी की तलाश करना उसके लिए स्वाभाविक होगा। इसी तरह वह मन जिसकी भूख ब्रह्म के सुख द्वारा मिटनी है; जब सीमाओं के

सुख के क्षेत्र में विचरण करने लग जाता है: तो उसका परिणाम निश्चित रूप से असन्तुष्टि ही होगी, यह स्वाभाविक है।

केवल आनन्द के क्षेत्र की ओर पूर्ण रूप से भागना: सक्रिय जीवन से ही भागना होगा।

मन जीवन के सुख तो चाहता है: लेकिन दु:ख नहीं चाहता। बाहर के जगत में सुख और दुख आपस में ऐसे पिरोये हुए हैं: कि वे एक-दूसरे से अलग किए ही नहीं जा सकते।

सारे सुखों में दु:ख है और सारे दु:खों में सुख है। माता-पिता अपने बच्चों के सुख के लिए जो दुख उठाते हैं, उस दु:ख में उनके लिए सुख है। कवि जिनके शेर व कविताएं उनके जीवन के दु:खों पर आधारित हैं: लेंकिन पाठक को उनमें सुख मिलता है।

योगस्थ कुरु कर्माणि

जीवन के सुख-दु:ख के क्षेत्र में यदि आनन्द की कमी होगी: तो जीवन नरक बन जायेगा। आनन्द की कमी में जीवन के बाह्य सुख-दु:ख ही नर्क हैं। ध्यान के अभ्यास के पश्चात् बाह्य जगत में स्वाभाविक क्रिया सुखी जीवन बिताने की कला है। केवल आनन्द में ही वह शक्ति है: जो क्रिया के हर क्षेत्र के जीवन को सुखमय बना देती है।

इसलिए जीवन की कला केवल यह है: कि आप सुख-दु:ख के क्षेत्र में ध्यान द्वारा कितना आनन्द पिरो सकने में समर्थ हैं?

फल अपने मन का हो जाये: इसके लिए इच्छा पूर्ति शक्ति चाहिए। आनन्द ही इच्छा पूर्ति शक्ति है। इसकी पुष्टि रामायण की चौपाई द्वारा होती है :-

जो इच्छा करिहुं मन मांही।
हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नांही॥

हमारे अन्दर की आत्मा ही हरि है: और आत्मा की शक्ति ही हरि का प्रसाद है। ज्यों-ज्यों ध्यान का अभ्यास बढ़ता जाता है और उसके बाद हम बुद्धि के सहारे कोई विशेष क्रिया ढूंढने की बजाय स्वाभाविक क्रिया में व्यस्त हो जायें: तो आनन्द हमारी क्रियाओं के क्षेत्र में ज्यादा तेजी से पिरो जाएगा। क्रियाओं के क्षेत्र में आनन्द को पिरोने की यही कला होगी; और इस कला में धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा जो जितना ही निपुण होता जाएगा: उसके जीवन की क्रियाओं का क्षेत्र उनता ही सुखी हो जायेगा।

एक मात्र चेतना का विकास ही वास्तविक जीवन है। जहां चेतना है: केवल वहीं जीवन है। हम नित्य क्रियाओं के बाद आराम करते हैं और सो जाते हैं।

जीवन केवल होश में है: बेहोशी में नहीं। जब मनुष्य अद्वैत चेतना (Unity Consciousness) की अवस्था में आ जाता है: उस समय संस्कारों के बादल इतने छट चुके होते हैं; और मन आत्मा के इतने समीप पहुंच जाता है: कि सूरज कभी डूबता ही नहीं। उस समय जीवन क्रियाओं में नहीं: मात्र जागृत अवस्था में है और अन्दर की जाग सोती हुई अवस्था के साथ-साथ भी बनी रहती है।

आन्तरिक जाग का रहना ही: जीवन है। यही समाधि की अवस्था है, यही ब्रह्मानन्द और पूर्णानन्द की अवस्था है तथा यही जीवन की प्रयोगात्मक अवस्था का स्वर्ग है। ❑

पुरुषोत्तम योग

(सन्यासी गीता)

ऊपर जड़ नीचे तना, जगत वृक्ष का रूप।
काटे ज्ञान वैराग्य से: पावे ज्ञान अनूप॥

ज्ञान नहीं वैराग्य बिन, इससे भक्ति न होय।
जब चित्त हो ज्ञान विराग में: भक्ति तब ही होय॥

संसारिक अभिलाषा तजे, ज्ञान ध्यान मन होय।
हानि-लाभ सुख-दु:ख तजे, पावे मुक्ति सोय॥

सूर्य अग्नि और चन्द्र का, जहां पहुंचे नहीं प्रकाश।
उत्तम पदवी पायकर: नीचे करे न वास॥

तेज सूर्य में मान तू: प्रकाशित संसार।
चाँद अग्न में जोत जो, वह मेरा आधार॥

धरती में हो बीज जो, कुछ दिन करे निवास।
औषध आदि अंश की, करूँ शक्ति में वास॥

प्राणी मात्र के हृदय में: जो है ज्ञान विचार।
जो कुछ ज्ञान है वेदों में: वह मेरा आधार॥

गुप्त रखन जो योग था, ज्ञान मोक्ष स्वरूप।
अर्जुन! तुझको कह दिया, परम आनन्द अनूप॥

-प्रस्तुति : अनु जैन (भिवानी)

संत कबीर

आज से लगभग 605 वर्ष पूर्व 1456-1575 ईसवी के मध्य वाराणसी (लहरतारा ग्राम) में एक जुलाहे ने सरोवर किनारे बिलखते नन्हे शिशु का पालन किया। अपनी वाणियों द्वारा समाज को झकझोर देनेवाला संत कबीर (भक्तिकालीन इतिहास में आध्यात्मिक क्रांति का जनक) की अनमोल वाणियां अज्ञान तिमिर का नाश कर: एक नए सवेरे की ओर संकेत करती हैं। सदियों से चली आ रही कुरीतियों तथा पाखंडों को खंड-खंड कर दिया। मानव-धर्म इस महापुरुष के

संदेशों से पुनः जीवित हो उठा। वे निर्गुण उपासक थे। कुछ लोग उन्हें हिन्दू कहते, तो कुछ कहते: कि वे मुस्लिम हैं। उनका तो यही कहना था: कि सभी जन एक हैं, छोटा-बड़ा कोई नहीं। उनकी वाणियों तथा उनके जीवन-दर्शन को आत्मसात करना आवश्यक है।

महात्मा कबीर ने समाज में फैली कुरीतियों पर सीधा-सरल किंतु कठोर शाब्दिक प्रहार किया। भक्तिकालीन कवि कबीर दास जी ने जो कुछ देखा-सुना व अनुभव किया, उसे अपनी वाणियों में उतार दिया। 'साखी ग्रंथ' तथा 'बीजक' में उनकी हजारों वाणियों का संग्रह है। शब्दों में गूढ़-गंभीर रहस्य छिपा है। पाखंड, कुरीतियों, धर्मान्धता, छुआछूत, जाति-पाति, अंधविश्वास आदि का उन्होंने प्रबल विरोध किया; धन, मोह-माया, जर-जमीन, ऊंच-नीच इत्यादि के घटाटोप में भटक रहे मानव को ज्ञान का जो दीप उन्होंने दिखाया, वह अपनी मिसाल आप है-इसलिए उनकी वाणियां बेमिसाल हैं।

ईश-भक्ति को लेकर जो मिथ्या धारणाएं समाज में व्याप्त हैं, उन पर कठोरतम प्रहार किया है। मिथ्या दंभ व अभिमान को तिरोहित कर सद्गुण, सद्भाव व सदाचार को अपनाने का मूल्य संदेश कबीर दास जी की वाणियों में प्रमुखता से मिलता है।

आपा मारे पिव मिलै, पिव में रहा समाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहै तो को पतियाय॥

जब मनुष्य का अहंभाव नष्ट हो जात है, तब उसे पिव (ईश्वर) के दर्शन होते हैं। वह पिव के दर्शन कर आनंद लाभ उठाता है, तथा हर पल, हर घड़ी पिव के ही दर्शनों में लीन रहता है। यदि वह उस अलौकिक आनंद का अन्य लोगों के समक्ष बखान करता भी है: तो उस पर विश्वास कौन करेगा? इसलिए जिसे पिव (ईश्वर) के दर्शन हो जाएं: तो उस का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। ❑

भगवद्गीत क्यों स्पन्दित हुआ ?

✍ महर्षि महेश योगी

भगवद गीत स्पन्दित इसीलिए हुआ: कि जिसको यदि इधर-उधर से पता नहीं लगा तो पता लग जाये, मालूम हो जाये।

लेकिन मालूम क्या होना है? केवल जो सहज, स्वाभाविक जीवन है: दुहरी पूर्णता का सौ प्रतिशत का जीवन है। सगुण-साकार क्षणभंगुरता भी नित्य है और निर्गुण-निराकार, सनातन, शाश्वत, सच्चिदानन्द भी नित्य है। इन दोनों नित्यताओं के बीच में: दोनों नित्यताओं को लेकर एक जीवन होता है।

जो वह स्पन्दन हुआ है उस गीत में: श्री मद् भगवत् गीता में जिस तथ्य का प्रकाश हुआ है: वह तत्व, वह सत्य, निर्गुण, निराकार की सच्चिदानन्दमयिता की पूर्णता और सगुण-साकार सच्चिदानन्दमयिता की पूर्णता दोनों को समान रूप से प्रकाश में लाया है। और इसलिये लाया है: कि जीवन के सहज स्वाभाविक रूप में दुहरापन है-यह भी पूर्ण है, वह भी पूर्ण है। सब लोग जो मनुष्य योनि में उत्पन्न हुए हैं: वे सब अपनी दुहरी पूर्णता को जीवन में व्यवहृत करें, उस जीवन में रहें, यही इस दुहरी पूर्णता का तथ्य है।

क्षणभंगुर संसार में रहते हुए भी नित्यता का अनुभव हो: नित्यता उसमें पिरोयी रहे। जीवन ऐसा नहीं रहे कि वह क्षण-क्षण में परिवर्तनशील है; परन्तु क्षण-क्षण की परिवर्तनशीलता नित्य होने के कारण उसके अन्तर तम में जो नित्यता स्थापित हुई है, वह भी बाहर जीवन में आ जाये और अनित्य जीवन में नित्यता का अनुभव हो। क्षण भंगुर संसार में नित्य, अनन्त, अखण्ड, सच्चिदानन्द का पूरा का पूरा संसार को अनुभव हो, इसके लिए भगवद्गीत हुआ है। प्रत्येक का जीवन गीतमय हो, तरंगित

हो, उस चीज से तरंगित हो जिस चीज का जीवन बना है-सच्चिदानन्द तरंगित हो इसके लिये भगवद्गीत प्रवाहित हुआ है। छूटते ही भगवान् ने कहा-

''अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे''

आदमी सदा नाशवान क्षेत्र में विचरण कर रहा है। उसका एक अविनाशी: भीतर वाले तत्व का प्रकाश है। ❑

हर व्यक्ति में: ब्रह्म शक्ति का खजाना

✍ **श्री सत्य नारायण शर्मा (09416164702)**

हर व्यक्ति के अन्दर ब्रह्म की शक्ति का एक खजाना है: जिसे आत्मा कहते हैं। ब्रह्म की शक्ति प्रकृति की सर्वोच्च देन है।

प्रकृति अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के पास समान आत्म-शक्ति है। श्रीमद् भगवत गीता 13.33 में श्री कृष्णानुसार :-

ज्यों एक रवि सम्पूर्ण जग में तेज भरता है सदा।
यों ही प्रकाशित क्षेत्र को: क्षेत्रज्ञ करता है सदा॥

हे भरत पुत्र! जिस प्रकार सूर्य अकेले इस सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है: उसी प्रकार शरीर के भीतर स्थित एक आत्मा सारे शरीर को चेतना से प्रकाशित करता है। इसी विषय में संत कबीर जी फर्माते हैं :-

कबीर तेज अनंत का, मानो सूरज सेनि।
पति संगि जागो सुन्दरी, कौतुक दीठा तेनि॥

अन्तर आत्मा की सूर्य समान ज्योति का अनुभव सबको नहीं होता। जो जीव मोह-निद्रा त्याग कर अन्तर्मुखी होकर आत्म-साक्षात्कार (Self Realization) करता है, वह ही इसका रहस्य-उद्घाटन कर पाता है।

समाज में आत्म-शक्ति शिक्षकों के लोप के कारण: मनुष्य

ने इस शक्ति के विषय मे सोचना ही बंद कर दिया है।

अपने सुख के लिए सामाजिक और सांसारिक शक्तियों का सहारा लेने लगा है। परिणामस्वरूप अलग-अलग व्यक्तियों की आत्म-शक्ति कम होने लगी और जीवन में दु:ख बढ़ता गया। आज के युग में अशांति ने अजगर (Dragon) का रूप धारण कर लिया है, जो अत्याधिक चिंता का विषय है। पुराणों में आत्मा को प्रभावित करने के लिए एक श्लोक मिलता है :-

''शिवं शान्तं अद्वैतं चतुर्थ मन्यते आत्मा।''

शिव कल्याणकारी शक्ति है। अर्थात् आत्मा इस शक्ति का स्त्रोत है। यह हर जीवात्मा के लिए कल्याणकारी है। मन इस कल्याणकारी शक्ति के अस्तित्व को अपनी शांत-अवस्था के रूप में अनुभव कर सकता है। शिवं को शान्तं बताया गया है। सभी जानते हैं कि

जहां उजाला है: वहां अंधेरा टिक नहीं सकता।

यदि अंधेरे कमरे में एक मोमबती जला दी जाए, तो व्यक्ति अंधेरे में ठोकरें खाने से बच जाता है। कम रोशनी में कुछ अंधेरा जरूर पिरोया रहता है। बिल्कुल उसी प्रकार उसके शान्त मन में अशान्ति पिरोयी हुई थी। मनुष्य में इस अंधेरे-रूपी अशांति को दूर करने की विधि भी श्रीमद्भगवत गीता 13.34 में श्री कृष्ण द्वारा समझाई गई है :-

क्षेत्रज्ञ एवं क्षेत्र अन्तर ज्ञान से समझें सही।
प्रकृति से छूटना: जो ब्रह्म को पाते वही॥

''हे भरत पुत्र! जिस प्रकार सूर्य अकेले इस सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है: इसी प्रकार शरीर के भीतर स्थित एक आत्मा सारे शरीर को चेतना से प्रकाशित करता है।'' जो लोग ज्ञान के चक्षुओं से शरीर तथा शरीर के ज्ञाता के अन्तर को देखते हैं; और भव-बंधन से मुक्ति की विधि

को भी जानते हैं: उन्हें परम लक्ष्य प्राप्त होता है। हम एक शिशु के जीवन की ओर अपना ध्यान ले जाएं। हर शिशु का जीवन सुखमय रहता है।

संसार का एक नियम है: हम जिस शक्ति को बढ़ाना नहीं सीखे; वह शक्ति समय के साथ-साथ कम अवश्य होती जाती है।

आध्यात्मिक शिक्षा को प्रेरित करने वाले समाज में नहीं मिलते। इसलिए समय बीतने के साथ-साथ बच्चा अशांत होता जाता है। जीवन में अशांति की डिग्री बढ़ने के साथ-साथ कल्याणकारी शिव की शक्ति कम होती जाती है; और मनुष्य अकल्याण की अवस्था की ओर बढ़ने लगता है। सतयुग में समाज के गुरु मात्र आठ-नौ वर्ष की आयु में बालक को 25 वर्ष की आयु तक अभ्यास करवाकर सिद्ध कर दिया करते थे। फिर गीता (2.48) में बताए हुए :

योगस्थ कुरू कर्माणि के सिद्धांत के आधार पर गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते थे।

गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने का यह अर्थ नहीं: कि अब वे साधना नहीं करेंगे।

सत्य तो यह है कि मनुष्य का जीवन ही एक साधना है।

परिणामस्वरूप, सतयुग के मनुष्यों का जीवन अत्याधिक सुखी हुआ करता था। कलयुग में मात्र इस शिक्षा के अभाव के कारण हर मनुष्य अपने बच्चों को कठिन परिश्रम द्वारा केवल बाह्य जीवन के संवारने की शिक्षा देता है। हर व्यक्ति का अनुभव है: कि समय बीतने के साथ-साथ समाज में केवल दु:ख, अशांति और कठिनाईयां ही बढ़ीं। इसलिए अधिकतर लोग अपने जीवन को सुखी बनाने में सफल नहीं हुए। ❑

आनन्द है : आन्तरिक सुख

✍ श्री गंगाधर बंसल (09416041346)

आनन्द आन्तरिक सुख है। यह वह सुख है जिसे अनुभव करने के लिए मन को किसी ज्ञानेन्द्रिय की मदद नहीं लेनी पड़ती। प्रयोगात्मक स्तर पर आप इसे महसूस कर सकें: इसके लिए पाठकगण अपना ध्यान घोर निद्रा के बाद की अवस्था की ओर ले जाएं। हर मनुष्य को उस समय अंदर से बहुत अच्छा प्रतीत होता है। उसके इस अनुभव में कोई ज्ञानेन्द्रिय अपना योगदान नहीं देती। **यही आनंद है।** चित् संस्कृत का एक शब्द है जिसका अर्थ है होश, जाग।

आनन्द और चित् दोनों एक ही तत्व के गुण हैं। इसलिए जब भी यह उभरते हैं: साथ-साथ उभरते हैं। जब भी दबते हैं: साथ-साथ दबते हैं।

इसकी अनुभूति भी हम अपने नित्य के जीवन में कर सकते हैं। जिस समय ब्रह्म के तत्व मन में उभरते हैं: उस समय हम देखते हैं कि मनुष्य निद्रा से जागृत अवस्था की ओर बढ़ता है। दूसरे शब्दों में

आनन्द और होश साथ-साथ ही उभरते हैं।

और जब मनुष्य को अन्दर की थकावट का अनुभव होता है: तो उभरती हुई थकावट के साथ-साथ मन की अवस्था भी निद्रा की ओर अग्रसर होती है। दूसरे शब्दों में आनन्द का दबना और होश का दबना दोनों साथ-साथ ही होता है। इससे यह बात भी अच्छी तरह समझ में आ जाती है कि

आनन्द का दबना ही थकावट है।

जैसे प्रकाश का दबना (अभाव) ही अंधेरा है; और प्रकाश की उपस्थिति

ही अंधकार के अभाव का कारण होता है। जैसे प्रकाश के जाते ही अंधेरा आ जाता है; और प्रकाश आते ही अंधेरा गायब हो जाता है: बिल्कुल इसी तरह

आनन्द के उभरते ही थकावट गायब हो जाती है।

और आनन्द के दबते ही थकावट महसूस होने लगती है। संत कबीर फरमाते हैं :-

दीपक पावक आंनिया, तेल भि आना संग।
तीन्यू मिलि करि जोइया, (तब) उड़ि उड़ि पड़ै पतंग॥

ज्योति के लिए तीन तत्वों की आवश्यकता होता है-दीपक, आग और जीव रूपी तेल। इसी प्रकार जीव में ज्ञान रूपी ज्योति तभी आ सकती है, जब **जीव रूपी दीपक में ज्ञान रूपी अग्नि और प्रेम अथवा भक्ति रूपी तेल एकत्र कर तीनों को योजित कर दें। ऐसा होने पर फिर तो विषय वासना रूपी पतिंगे स्वत: आ-आकर जल मरते हैं।** ❑

आनंद लोक

✍ श्री दिनेश चमोला शैलेस

असली आनंद का पुष्प: ज्ञान रूपी आत्मा के सरोवर से अनुप्राणित होकर महकता है। उस पुष्प पर चहक व महक तभी आती है: जब वह आत्मा के अमृत सरोवर के जल तक अपनी जड़ें पहुंचा देता है।

संसार के भौतिक सुख व आकर्षण: प्लास्टिक के फूलों की तरह उगते हैं, ललचाते हैं, भरमाते हैं। उनसे तृष्णाओं की बेल लपलपाती जरूर है: लेकिन हाथ पश्चाताप के सिवा कुछ नहीं लगता। व्यक्ति सुख व आनंद पाने के लिए: जोखिम लेकर आकर्षण के समुद्र में कूद जाता है, डूबते-डूबते भी कुछ और पाने का आकर्षण उसे उस दलदल में धंसाने के लिए बाध्य करता है।

लेकिन हाथ लगती है हताशा व निराशा।

जब पास में झोपड़ी थी: तो हवेली ने सुख दिया, जब हवेली प्राप्त हो गई: वह सुख व आनन्द बिदककर महल में चला गया।

जब अथक श्रम से महल भी मिल गया: तो न मन की बेचैनी कम हुई, न शांति-सुख ही मिला।

मन झोपड़ी के मन से अधिक संतप्त हताश व निराश हो गया।

कहां है भौतिकता में सुख ? जो मन झोपड़ी में जितना शांत था: वही महल में उतना अशांत क्यों? जब जो सोचा था: वह पा लिया तो फिर सुख-शांति का प्रसाद क्यों नहीं मिला ? जो बाहर से जितना संदुर वह भीतर से उतना ही दुखी: फिर कहां है सुख? कई प्रकार के सौन्दर्य प्रसाधनों के उपयोग से क्यों नहीं उपजी भीतरी सुंदरता ?

संसार के सारे उपकरण, सौन्दर्य प्रसाधन: दुखपूर्ण कच्ची सामग्री से निर्मित हैं। वे दुखी को और दुखी और सुन्दर को भद्दा तो कर सकते हैं: लेकन उनमें सुख सौन्दर्य की दिव्य ज्योति नहीं धधका सकते।

आनंद व सुख सौन्दर्य: भीतर की वस्तुएं हैं। ये तभी प्राप्त होंगे: जब ज्ञान-पिपासु जीव अंतर्मुखी होगा।

सुख आनंद व सौन्दर्य की त्रिवेणी का असली आनंद; तभी मिलेगा: जब ज्ञान, तप, साधना, आस्था, भक्ति, श्रद्धा व विश्वास की सीढ़ियां उतर; हम देह के आकर्षण तज: आत्मा के अमृत सरोवर में डुबकी लगा; ज्ञानार्जन कर लें।

देह व गेह के सारे अर्चन व अर्जन नकली हैं। आत्मा के सारे अवलंबन असली हैं। आइए इसमें दिव्य स्नान कर: सुख व आनंद के शाश्वत मोती बटोरें। ❑

सत्संग : चेतना जागृति में मददगार

✍ डॉ० बलदेव राज नाशा

समाज में नित्य मनुष्य चेत और अचेत अवस्थाओं में आता जाता है। उसे इस बात का ज्ञान है कि अचेत अवस्था में सृष्टि की कोई भी शक्ति किसी के काम नहीं आती। मात्र चेत अवस्था में अलग-अलग व्यक्ति अलग-अलग विषयों के क्षेत्र में अपनी चेतना के आधार पर उस क्षेत्र की शक्ति का प्रयोग करता है। यह इस बात को प्रमाणित करता है; कि जिस व्यकित की जिस क्षेत्र में जैसी चेतना की जागृति होती है: उस क्षेत्र की केवल उतनी ही शक्ति वह प्रयोग में ला सकता है। यही कारण है कि अलग-अलग क्षेत्रों में (भले वे क्षेत्र मात्र इन्द्रियजगत के हों या दिव्यजगत के): शक्तियां अपार हैं।

लेकिन इन शक्तियों के प्रयोग की क्षमता अलग-अलग व्यक्तियों की चेतना की जागृति पर ही निर्भर करेगी। जो मनुष्य पांच इन्द्रियों की चेतना में ही जीवन का सब कुछ देखने की कोशिश कर रहा है: वह जीवन के सुख-दु:ख से परे कभी नहीं हो पाता। जीवन के तरह-तरह के दु:खों को उसे भोगना ही पड़ेगा। जीवन के कष्ट मनुष्य को कष्टदायी ना हों; इसके लिए उसको आन्तरिक चेतना की जागृति प्राप्त करनी पड़ती है। यही अध्यात्म है। आन्तरिक चेतना की जागृति के दो रास्ते हैं :-

(1) प्रयासहीनता का अभ्यास (ध्यान)

(2) आन्तरिक जगत के विषयों पर व्यक्तिगत वार्तालाप, जिसे मनुष्य सत्संग कहता है। गीता कहती है कि -

आन्तरिक चेतना की जागृति के दो रास्ते हैं-संख्य और योग।

लेखक का कहना है कि प्रयासहीनता (ध्यान) का अभ्यास ही योग है।

लेकिन अभ्यास द्वारा जागृति पैदा करने के साथ-साथ: जीवन के अलग-अलग पहलुओं के सुख और दुख पर वार्तालाप (सत्संग) भी मनुष्य की चेतना की जागृति में बहुत मदद करती है। इसी आधार पर भारत जैसे आध्यात्मिक देश में अलग-अलग समय के आध्यात्मिक पुरुष: समाज के उन व्यक्तियों के लिए जो उनके सम्पर्क में नहीं आ सकते; जीवन के अलग-अलग पहलुओं के ज्ञान को पुस्तकों द्वारा समाज तक ले जाते रहे हैं।

आत्मसत्ता का प्रभाव : हर चेतना पर

हम देखते हैं और जानते हैं कि आग का स्वभाव हर चीज को जलाना है: लेकिन अध्यात्म का इतिहास यह बताता है कि सीता ने अग्नि परीक्षा दी। जिसका अर्थ यही है: कि अग्नि सीता को जला नहीं सकी। पूरी लंका जल गई, लेकिन लंका को जलाने वाले हनुमान की पूंछ नहीं जली।

होलिका को आग में न जलने का वरदान था: फिर भी होलिका जल गई। प्रहलाद बच गए।

ये अध्यात्म के इतिहास के चमत्कार नहीं हैं: बल्कि साधना की अवस्थाओं का वर्णन है।

सीता और प्रहलाद की चेतना और आग की चेतना के सामंजस्य का उदाहरण है। उपरोक्त : गीता और रामायण के कथनों की पुष्टि करते हैं। अग्नि भी देवगण में आती है और सीता और प्रहलाद जैसे ईश्वर भक्त अग्नि की उन्नति करते हुए: अग्नि की चेतना से ऐसा सामंजस्य पैदा कर सकते हैं।

यह परियों की कहानी जैसी काल्पनिक बातें नहीं हैं, बल्कि उच्च स्तर के उन साधकों की चेतना की अवस्था का वर्णन

है, जिस स्तर के साधक हर युग में नहीं पाए जाते।

विद्यार्थी जब प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने की तैयारियां करता है: तब कम से कम फेल होने की सम्भावना नही ंरहती। इसी प्रकार से जब आज के युग के साधक ध्यान की साधना की उपरोक्त सम्भावनाओं से प्रेरित होकर: अपना ज्यादा से ज्यादा समय इस साधना पर न्यौछावर करेंगे: तो वे आग से सामंजस्य पैदा करने की अवस्था तक भले ही न पहुंच सकें; लेकिन कम से कम अपने परिवार के व्यक्तियों, अपने साथियों, अपने खाने की वस्तुओं या यह कहें कि उन सबकी चेतनाओं, जिनके सम्पर्क में वे अपने नित्य के जीवन में इन्द्रीय सुख हेतु आते रहेंगे: से सामंजस्य की ओर अग्रसर होते रहेंगे।

निश्चय ही उनका और समाज का जीवन धीरे-धीरे केवल सुख की ओर अग्रसर होता ही चला जाएगा।

यही सारे अध्यात्म के शिक्षकों का उद्देश्य है और सामाजिक प्राणियों की मांग है। एक शंका उठती है:

कि क्या सीता और प्रहलाद की साधना से अग्नि ने मात्र इन दो विशेष व्यक्तियों के लिए अपना स्वभाव बदल दिया था? अग्नि में चेतना है लेकिन बुद्धि है: ऐसा नहीं लगता। फिर अग्नि ने इनको जलाने से क्यों पीछे छोड़ दिया?

इसका उत्तर यह है कि हम अच्छी तरह जानते हैं कि अग्नि में हर वस्तु को जलाने की ताकत है। कुछ को जलाकर राख कर देती है। जैसे कागज, लकड़ी इत्यादि। कुछ को आग स्वरूप बना देती है, लेकिन समाप्त नहीं कर पाती-जैसे लोहा। कुछ वस्तुों का रूप भी बदल जाता है, वे ठोस से द्रव में परिवर्तित हो जाती है। ठंडक पाने पर वे फिर अपने असली रूप में आ जाती है। जैसे बर्फ-

लेकिन सृष्टि में मात्र पानी की चेतना एक ऐसी चेतना है: यदि उसे बर्तन की कैद से स्वतंत्र कर दिया जाए तो पानी का प्रभाव अग्नि पर पड़ेगा और अग्नि बुझ जाएगी, लेकिन अग्नि की चेतना का प्रभाव पानी पर नहीं होता।

इसी प्रकार यह समझना आसान होगा कि मात्र आत्मसत्ता की चेतना पर सृष्टि की किसी भी चेतना का प्रभाव नहीं पड़ता: यद्यपि इस चेतना का प्रभाव हर चेतना पर पड़ता है। इसीलिए:

यदि एक साधक अपनी साधना के माध्यम से अपने शरीर को इस शक्ति से तर-बतर करने में सफल हो जाए, तो ऐसे शरीर पर अग्नि अपना प्रभाव कैसे डालेगी?

मात्र ऐसे शरीर अग्नि परीक्षा देने योग्य होते हैं।

आत्मसत्ता पर किसी का प्रभाव नहीं।

आत्मसत्ता हर चेतना को प्रभावित करती है। समस्त ब्रह्माण्डों की चेतना पर इस आत्मसत्ता का प्रभाव ऐसा पड़ता है: कि अलग-अलग चेतनाओं में मात्र सामंजस्य बढ़े जिससे कि ब्रह्मज्ञान के विद्यार्थियों के विद्या ग्रहण करने में कोई बाधा न पड़े। ऐसा प्रकृति का स्वभाव है:

स्वयं ब्रह्म की इच्छा है और इसी कारण ब्रह्म द्वारा रचे हुए इस यज्ञ को यह शकित मिली है। इस यज्ञ के माध्यम से मनुष्य समस्त चेतनाओं में सामंजस्य पैदाकर मृत्युलोक के सारे ब्रह्मज्ञान के विद्यार्थियों को इस विद्या के ग्रहण करने के लिए ज्यादा से ज्यादा अच्छी परिस्थितियां प्रदान करें। ❑

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-28 : ब्रह्म-क्षेत्र में मन चरे, ब्रह्मचर्य का अर्थ।
भावी जीवन सुखद हित, करता हमें समर्थ॥

आज के समय में अधिकतर मनुष्य अपने जीवन को बुद्धि की शक्ति द्वारा साधने का प्रयास करते हैं। परन्तु जिस युग में ब्रह्म का ज्ञान समाज से गायब नहीं हुआ था, हर व्यक्ति अपने जीवन को आत्मा की शक्ति द्वारा संवारता था। प्राय: 20-25 वर्ष की आयु से पहले कोई भी मनुष्य अपनी बुद्धि का इतना विकास नहीं कर पाता है: कि वह गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर, उसके कर्त्तव्यों का पालन भली-भांति करने की क्षमता पा सके। जब समाज को ब्रह्म की शक्ति पाने की विधि का ज्ञान था: तब भी बच्चों को 25 वर्ष की आयु तक गुरुकुल में रहकर ध्यान का भी अभ्यास करा कर, उसकी आत्मिक शक्ति यथेष्ट बढ़ा दी जाती थी। उसके बाद उन्हें वैवाहिक जीवन की स्वीकृति दी जाती थी, क्योंकि तब तक वे इस योग्य हो जाते थे: कि अपनी आत्म-शक्ति के सहारे अपना और अपने कुटुंब का पालन-पोषण कर सकें। 25 वर्ष की आयु तक ब्रह्म के क्षेत्र में विचरण (चर) करने की साधना के कारण ही; उसे ब्रह्मचर्य का नाम दिया गया था।

समय बीतने के साथ-साथ, ज्यों-ज्यों ब्रह्म ज्ञान की शिक्षा समाज से गायब होती गई: लोगों ने ब्रह्म के क्षेत्र में मन के विचरण को ब्रह्मचर्य बताने के बजाय: दाम्पत्य-जीवन के सुख से दूर रहने को ब्रह्मचर्य कह दिया। यद्यपि 25 वर्ष की आयु तक ब्रह्म के क्षेत्र में विचरण की साधना-काल में ऐसा स्वत: ही हो जाता था। ❑

नोट :- 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 20/- (बीस) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश : अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

–Sh. Rakesh Garg, Keshav Lace Emporium,
Shop No. 91, Lajpat Rai (Rehri) Market, Hisar-125001

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार में पारिवारिक ध्यान सत्संग शाम को 4 बजे से 6 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

–सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन एस्टेट-II,
पुष्पा कम्पलैक्स के पीछे, हिसार-125005

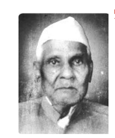

PRINTED MATTER